अध्याय सैंतीसवाँ

॥श्री गणेशाय नमः॥ श्री सरस्वत्यै नमः॥ श्री सिद्धारूढ़ाय नमः॥

"इस विश्व में लीलाएँ दिखाकर क्रीडा करने वाले हे सिद्धनाथजी, आप सर्वोत्तम मूलधर्म का संग्रह होकर अत्यंत उदार हैं। आपकी शरण में आए हुए लोगों को आप इस जगत में उनके अस्तित्व के महत्व की प्रतीति दिलाकर उनके सभी सांसारिक बंधन नष्ट करते हैं; इस कलियुग के पापों का विनाश करने वाले आप हमेशा शुद्ध होते हुए अनंत हैं; हे ईश्वर, आप ज्ञान के शस्त्र से सभी गुणों का (सत्व, रज और तम) विनाश कीजिए।"

सिद्धसतगुरुजी को मेरा प्रणाम। हम अज्ञानी होने के कारण आप को पूर्ण रूप से समझ ही नहीं पाते, उसपर यह भव सागर हमें डुबोने लगता है। ऐसे समय में आप ही हमें तारने वाली नाव हैं। हे स्वामीजी, आपकी मदद से हम यह भव सागर पार हो जाएँगे, क्योंकि मैं यह समझ गया हूँ की हमें उद्धरने के लिए आप अवतरित हुए हैं। अगर आप हमारी उपेक्षा करेंगे तो कौन हमारी मदद करेगा? हम इतना ही समझते हैं की आपके सिवाय इस जगत में हमारा अन्य कोई त्राता नहीं है। हम भावविभोर होकर आप की शरण में जाएँगे, हमेशा आप की महिमा गाएँगे, हृदय में हमेशा आप ही का रूप देखेंगे तथा मन ही मन आप ही का ध्यान करेंगे। आप ही के सन्निधान में रहेंगे। जहाँ आप रहेंगे वहीं हम भी बस्ती बनाएँगे, हमेशा आप ही का नाम लेंगे तथा कलि से भी भयभीत नहीं होंगे। हमेशा हमें संतों की संगति मिलें, हमारा मन उनके चरणों में लीन हो, घरबार तथा शरीर पर आसक्ति न रहें, इनके सिवाय मैं अन्य कुछ भी नहीं माँगता। जो सत्संग में हमेशा लीन होकर रहता है, उसे इस जगत में धन्य समझना चाहिए, भक्ति तथा चार प्रकार की मुक्तियाँ (सालोक्य मुक्ति, सारुप्य मुक्ति, सामिप्य मुक्ति और सायुज्य मुक्ति इस प्रकार शास्त्रों में चार प्रकार की मुक्तियों का वर्णन किया है) ऐसे मनुष्य के चरणों में लोटती हैं। सत्संग को ही सुख सागर समझें, सत्संग से निश्चित ही मोक्ष प्राप्ति होती है। ऐसी सत्संग की महिमा साक्षात श्रीशिवजी तथा पार्वती जानते हैं और जिससे आत्मज्ञान की प्राप्ति होती है। उस सत्संग की महिमा अपार है। सत्संग प्राप्ति के लिए जो

मनुष्य कष्ट उठाता है, वह बिना आयास के ब्रह्म प्राप्ति कर लेता है, जिससे दयालु सतगुरुजी आनंदित होते हैं तथा उसे आत्मज्ञान प्रदान करते हैं।

अस्तु। महान तीर्थ हरिव्दार में एक ब्राह्मण रहता था; उसे कृष्ण नाम का एक पुत्र था। वह ब्राह्मण प्रतिदिन श्री तुलसीदासजी की लिखी 'तुलसी रामायण' पढ़ता था और कृष्ण बड़े आदरभाव के साथ तल्लीन होकर सुनता था। साधुसंतों की कहानियाँ सुनकर उसे विशेष आनंद होता था; धीरे धीरे ऐसे व्यक्तियों पर उसकी श्रद्धा बढ़ने लगी और उनकी सेवा करने की उसके मन में इच्छा होने लगी। जो सारे संतों का भक्त था, ऐसे कबीरदास की जीवनी सुनते समय कृष्ण की आँखों से अविरत आँसू बहते रहते, उस समय वह मन ही मन कहता था की मैं भी ऐसा ही बनूँ। उसपर वह प्रतिदिन गंगा नदी के किनारे होने वाले साधुओं की सेवा करने लगा और प्रेम पूर्वक उनके साथ बैठने लगा। विद्याभ्यास छोड़कर प्रतिदिन संतों की सेवा में मग्न होकर रहने वाले कृष्ण को देखकर उसके पिताजी को उसकी चिंता होने लगी। कृष्ण दस वर्ष का होने के पश्चात उसके माँ बाप ने उसे विद्याभ्यास पूरा करने के लिए कहा, परंतु उसने उनकी बातों पर ध्यान नहीं दिया। मार्ग में कोई साधु मिलते ही कृष्ण उसे अपने साथ भोजन के लिए घर लेकर आता था। इस प्रकार कुछ दिन बीतने के पश्चात उसके पिताजी ने कहा, "साधुओं को घर बुलाकर लाना तुम बंद कर दो। इसके पश्चात अगर तुम एक भी साधु को घर बुलाकर ले आओगे तो मैं उस साधु को सीधा घर से बाहर निकाल दूँगा।" पिताजी की बात सुनकर कृष्ण चिंतित हो गया, जिसके कारण उसे रातों को नींद नहीं आती थी। इसी प्रकार एकबार गंगाकिनारे जाने के पश्चात उसने अचानक वहाँ एक लेटा हुआ साधु देखा; पूछताछ करने के पश्चात उसे पता चला की उस साधु को कई दिनों तक भोजन ही नहीं मिला था| साधु को भोजन नहीं, कम से कम दूध तो देना चाहिए, ऐसा सोचकर उसने घर लौटकर देखा तो घर में दूध भी नहीं था, इसलिए उसने दूध खरीद ने के लिए पिताजी के पैसे चुराए। उसपर कृष्ण ने बाजार से दूध खरीदकर उस साधु को लाकर दिया और ठीक उसी समय उसके पिताजी ने उसे देख लिया और उसे दूध के बारे में पूछा, तब कृष्ण ने कहा, "पिताजी, सचमुच मैंने आप के पैसे चुराकर दूध खरीदकर इस मरियल साधु को

पिलाया है।" उसकी बात सुनते ही उसके पिताजी आगबबूला हो गये और उन्होंने लाठी से कृष्ण की बहुत पिटाई की; घर ले जाकर उन्होंने उसे एक खंभे से बाँध दिया। ऐसी जकड़ी हुई स्थिति में भी चिंता करते हुए कृष्ण ने भगवान से प्रार्थना की, "हे भगवान, अब कौन उस साधु को दूध देगा? दूध के बिना वह साधु मर जाएगा। हे प्रभु श्रीराम, अब अगर आप मुझे इस बंधन से छुड़ाएँगे तो मैं स्वयं को गुलाम के तौर पर बेचकर ही क्यों न सही पैसे कमाकर, दूध लेकर उस साधु के पास दौड़ता हुआ चला जाऊँगा, जिससे वह साधु नहीं मरेगा।" ऐसा कहते हुए वह बहुत रोने लगा। इतने में उसने वही साधु उसके सामने खड़ा हुआ पाया; उस साधुने कृष्ण को प्रेम से सहलाया, तत्काल उसे बंधी हुई रस्सी अपने आप टूट गयी। उस साधु ने उसे प्रेम पूर्वक उठाया और कहा, "अब तुम मेरी चिंता मत करो। मैं हमेशा तुम्हारे पास ही हूँ। योग्य समय आने पर मैं तुम्हें यहाँ से छुड़ाऊँगा।" कृष्ण ने कहा, "मुझे आपके साथ ही रहने दीजिए, मुझे आपकी सेवा करना अच्छा लगता है।" ऐसा कहते समय कृष्ण की आँखों से अश्रु बहने लगे। गद्‌गद्‌ होकर, रुंधे हुए गले से वह बोला, "हे साधुबाबा, आप मुझे यहाँ छोड़कर मत जाईए, अन्यथा मेरे प्राण निकल जाएँगे; इसीलिए मैं आप को इतनी आस्था से बिनती कर रहा हूँ।" साधु ने उसे आश्वासित किया और कहा, "हे बालक, तुम मेरी बिलकुल चिंता मत करना। देख मेरा यह सत्य स्वरूप!" कृष्ण उस साधु की ओर देख ही रहा था की वह साधु अंतर्धान हो गया और वहाँ प्रभु श्रीरामचंद्र प्रकट हुए, चारो ओर दिव्य प्रभा फैल गयी। कृष्ण ने वह दिव्य रूप अपनी आँखों से देखा। साँवला रंग, सिर पर मुकुट, कान में कुण्डलें, गले में वैजयंती माला, विशाल आँखें, चेहरे पर फैली सूर्यप्रभा| ऐसा सुंदर रूप देखकर कृष्ण देहभान पूर्ण रूप से भूल गया। सारी वृत्तियाँ रामस्वरूप होने के कारण वह ब्रह्मानंद में लीन हो गया। उसपर प्रभु राम ने मधुर शब्दों में कृष्ण से कहा, "हे बालक, अनंत जन्मों के तुम्हारे पुण्यों के कारण आज तुम मेरा यह रूप देख पाए। संतों पर होने वाली तुम्हारी भक्ति की दृढ़ता देखने के लिए ही मैं यहाँ आया हूँ। सच्चे साधु की जो मानसिक स्थिति होती है, उस स्थिति के बगैर अन्य किसी भी वस्तु पर तुम्हारी आसक्ति नहीं है। कुछ अल्प समय के पश्चात तुम वह स्थिति प्राप्त करोगे| तब तक तुम साधुओं की सेवा में तल्लीन

रहोगे। दिनरात तुम मेरा नामस्मरण तथा चिंतन करो, मैं हमेशा तुम्हारे पास ही हूँ।" ऐसा कहकर प्रभु श्रीराम अंतर्धान हो गए। उसी पल उसके पिताजी ने दौड़ते हुए आकर उसे गले लगाया और कहा, "तुम्हारे चेहरे पर कैसी दिव्य प्रभा फैली है! मैं तुम्हें समझ नहीं पाया। इसके पश्चात तुम जो चाहो वह करो, मैं तुम्हें रोकूँगा नहीं, परंतु तुम घर में ही रहो।" पिताजी के शब्द सुनकर हर्षित हुआ कृष्ण रामप्रेम से हृदय भर जाने के कारण नाचने लगा। उसके पश्चात प्रतिदिन कृष्ण साधु को घर लेकर आता था, उसकी यथायोग्य आवभगत करके उसे भरपेट भोजन कराकर भेजता था।

जब कृष्ण सोलह वर्ष का हुआ तब उसके पिताजी ने जबरदस्ती से उसका विवाह किया; उसके पश्चात एक वर्ष वह घर पर रहा। उसके पश्चात कृष्ण की एक साधु से भेंट हुई और उसने कृष्ण को वैराग्य का बोध किया; तत्काल कृष्ण अपने मातापिता तथा पत्नी को छोड़कर उस साधु के साथ निकल पड़ा। एक रात किसी को भी खबर हुए बिना वे दोनों जंगल के मार्ग से गए और अनेक तीर्थों के दर्शन करते हुए काशी पहुँच गए। वहाँ वे दोनों एक संन्यासी के साथ रहकर उसकी सेवा करने लगे। उस समय गुरुजी ने कृष्ण से पूछा, "तुम्हारे घर वाले तथा रिश्तेदार कौन हैं और कहाँ रहते हैं?" उसपर कृष्ण ने उन्हें बताया की उसके कोई रिश्तेदार नहीं है। कृष्ण ने संन्यास दीक्षा स्वीकारने की मनोकामना व्यक्त करने के उपरांत सतगुरुजी ने उसे संन्यास दीक्षा दे दी, और उसे ॐ कार मंत्र का उपदेश देकर उसका नाम गोविंदानंद रखा। उसके पश्चात कुछ दिन वहीं रहकर तत्पश्चात गुरु की आज्ञा लेकर गोविंदानंद भ्रमण करने निकल पड़ा और व्दारका पहुँचा। वहाँ उसकी भेंट साधु शिवानंद से हुई, जिन्होने उसे बताया की हुबली में रहने वाले सिद्धारूढ़जी साक्षात भगवान शिवजी का अवतार है। शिवानंद ने कहा, "मैं उन्हीं का शिष्य हूँ तथा वह मुझ से विशेष प्रेम करते हैं। विविध स्थानों से सामग्री इकट्ठी करके मैं समारोह के लिए लेकर आता रहता हूँ। माघ तथा सावन महीने में वहाँ भव्य समारोह मनाए जाते हैं, उस समय पूर्ण वैभव के साथ सतगुरुजी की पूजा की जाती है। वे सभी पर एक समान कृपा करने वाले, सभी को सुखी करने में मग्न और भक्तों को हमेशा संकट के समय मदद करने वाले होने के कारण लोग उन्हें दीनानाथ कहते हैं। एकबार भी अगर आप

उनके दर्शन कर लेते हैं, तो भी आप का मन शांत हो जाता है, क्योंकि वे दिव्य प्रभा से सुशोभित चेहरा होने वाले परमात्मा का रूप होकर तत्काल त्रितापों का निवारण करते हैं।" शिवानंद के शब्द सुनकर गोविंद का मन शांत हुआ और मन ही मन उसे सिद्धारूढ़जी से मिलने की तीव्र कामना हुई। तत्काल उसने व्दारका छोड़ दी और वह सीधा हुबली आ पहुँचा; जब वह सिद्धाश्रम आ पहुँचा तब मध्यरात्रि हुई थी तथा सभी लोग गाढ़ निद्रा में थे। इतने में अचानक सतगुरुमहाराजजी बाहर आ गए, उन्हें देखकर गोविंदानंद आनंदित होकर बोला, "हे महाराज, सिद्धारूढ़ यतिवर्य कहाँ हैं यह मुझे जल्दी बताईए।" सतगुरुजी ने कहा, "आप को भूख लगी हैं इसलिए आप तुरंत मठ में आईए।" यह सुनकर गोविंदानंद आश्चर्य से दंग रह गया; वह मन ही मन बोला की मेरे प्रति कुछ भी जानकारी न होते हुए भी मुझे भूख लगी है, यह इन्हें कैसे ज्ञात हुआ?

उसपर सतगुरुजी हाथ थामकर गोविंदानंद को मठ में ले गए और शिष्यों को जगाकर उसे तत्काल भोजन कराने के लिए कहा। सिद्धजी ने शिष्यों से कहा की वह तीन दिनों से भूखा है, परंतु संन्यासी ने कहा, "सिद्धारूढ़जी के दर्शन किए बिना मैं भोजन नहीं करुँगा।" तब शिष्यों ने कहा, "हे साधुवर्य, यही हैं वह सिद्धारूढ़ सतगुरुमहाराजजी।" तत्काल उसने प्रेम पूर्वक सतगुरुजी के चरण छुए और कहा, "हे दयालु सतगुरुनाथजी, मेरे जैसे एक साधारण मनुष्य की भी आप को इतनी चिंता हैं। शिवानंदजी ने आप की महिमा का विवरण मुझे सुनाया है, अब वह सब कुछ मैं स्वयं प्रत्यक्ष अनुभव कर रहा हूँ। हे गुरुनाथजी, देखा जाए तो आप की अचानक मुझ पर कृपा हो ऐसा मेरा कुछ भी अधिकार नहीं है। क्योंकि, मैं तो आप के चरणों में पड़ा हुआ एक क्षुद्र मनुष्य हूँ।" ऐसा कहकर उसने फिर एकबार सिद्धारूढ़जी के चरण छुए। शिष्यों ने सर्वत्र खोजकर देखा परंतु कहीं भी रात का बचा हुआ खाना नहीं मिला। फलाहार के पदार्थ भी नहीं थे। यह देखकर सिद्धजी ने कहा, "जैसे महर्षि दुर्वास धर्मराजा से मिलने उसके कुटीर जाने के पश्चात, उन्हें देने के लिए उसके पास कुछ भी न था, कुछ ऐसी ही स्थिति अब यहाँ उत्पन्न हुई है। उस समय द्रौपदी ने कृष्ण भगवान की दुहाई देने के कारण, उसने उसकी मनोकामना पूरी की, अब मैं किस की दुहाई दे दूँ?" उसपर उस सन्यासी ने कहा, "आप स्वयं को ही दुहाई दीजिए।" तब

सतगुरुजी हँसकर झट से उठे और मठ के बाहर गए और कुछ ही क्षणों में वापस हाथ में धोती से बँधी गठरी लेकर आए| धोती खोलकर देखा तो उस गठरी में अनेक प्रकार के फलाहार के पदार्थ थे। सतगुरुजी ने कहा, "मैं ये पदार्थ लेकर आया हूँ।" परंतु किसी को भी पता नहीं चला की एक क्षण में वे सारे पदार्थ उन्होंने कहाँ से और कैसे लाए। गोविंदानंद ने मन ही मन कहा की यह तो प्रत्यक्ष ईश्वर का अवतार ही है; उसपर उसने आनंदित होकर फलाहार किया और वह सोने गया।

दूसरे दिन सतगुरुजी ने कहा, "आनंद की मूर्ति होने वाले गोविंदस्वामीजी आप हमारी संगति में यहीं रहिए। आप की संगति का लाभ सभी को मिलने दीजिए।" उसपर गोविंदानंद ने कहा, "मेरे अनंत जन्मों के पुण्य होने के कारण मुझे आप के दर्शन हुए। इसीलिए, हे गुरुनाथजी, मरते दम तक ये दिव्य चरण मैं नहीं छोडूँगा। देश विदेश जाकर आप की पुण्यदायक महिमा बयान करने की सद्बुद्धि आप मुझे प्रदान करें, यही मेरी आप के चरणों में प्रार्थना है।" उसपर गोविंदानंद प्रवचन करने के लिए सिद्ध हो गए। जब वे गुरु की करनी तथा महिमा बयान कर रहे थे, तब श्रोतागण के मन में गुरुप्रेम जागृत होकर वे तल्लीन हो गए। उनके कीर्तन में मानो प्रेम सागर ही उमड़ पड़ा था। उन्होंने किया हुआ सतगुरुजी का वर्णन सुनकर श्रोतागणों की आँखें भरकर अश्रु बह रहे थे। इस प्रकर देश विदेश के संतमहंतों को सिद्धनाथजी खोजकर ले आते थे, क्योंकि हुबली आते ही उनकी चंचल होकर भटकने वाली वृत्ति स्थिर हो जाती थी। सिद्धसतगुरुजी इस पृथ्वी पर अवतरित ईश्वर का पूर्णावतार होने के कारण ज्ञान प्राप्ति का अधिकार होने वाले लोग उन्हें खोजते हुए यहाँ तक आते हैं। भक्तगणों की शुद्ध स्वरूप रूपी नदियों को स्वयं में एकरूप करने वाले तथा उन्हें सुखकारक होने वाले सतगुरुजी दयासागर हैं। संतों की जीवनी स्वयं अपने कानों से सुनने से श्रोतागण मन ही मन आनंदित होते हैं, इसीलिए, इसी प्रकार आनंद देने वाली जीवनी का मैं लेखक बना हूँ। अस्तु। जिसका श्रवण करने से सभी पाप भस्म हो जाते हैं, ऐसे इस श्री सिद्धारूढ़ कथामृत का मधुर सा यह सैंतीसवाँ अध्याय श्री शिवदास श्री सिद्धारूढ़ स्वामीजी के चरणों में अर्पण करते हैं। सबका कल्याण हो।

॥ श्री गुरुसिद्धारूढ़चरणारविंदार्पणमस्तु ॥